RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

200वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

वर्ष: 50, अंक : 1 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 2 अप्रैल , 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 1, 30 मार्च-2 अप्रैल 2023 तदनुसार 20 चैत्र , सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

व्रती के लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु
विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्न
प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।

ऋग्वेद १/८६/१

शब्दार्थ-**आ नः** = हमारे पास, **भद्राः** = शुभ, **क्रतवः** = संकल्प, **यन्तु** = आवें, **विश्वतः** = चारौ ओर से, **अदब्धास** = जो दबने वाले न हों, **अपरितासः** = किसी से घिरे हुए न हों, **उद् भिदः** = समस्या का समाधान करने वाले हों, **देवाः** = देवता, **नः** = हमारे लिए, **यथा** = जिससे, **सद्मिद वृधे असन्** = सदा उन्नति करने वाले हों, **अप्रायुवः** = प्रमाद रहित, **रक्षितारः** = रक्षा करने वाले, **दिवे दिवे** = प्रतिदिन होवें।

भावार्थ-प्रत्येक व्यक्ति सामान्यरूप से अच्छे कार्यों को करना चाहता है और बुरे कार्यों को नहीं करना चाहता है, यह इच्छा प्रायः सभी के मन में बनी रहती है किन्तु इच्छा मात्र से कार्यों का सम्पादन नहीं हो पाता है। किसी भी श्रेष्ठ कार्य को अवश्य करने और त्याग, तपस्या पुरुषार्थ के साथ करने के पीछे संकल्प का बहुत बड़ा हाथ होता है। जब कोई दृढ़ता से अपने मन में यह निश्चय कर लेता है कि मैं इस कार्य को करूँगा ही चाहे कितनी भी कठिनाईयाँ, बाधाएँ क्यों न आवें। ऐसा निश्चय करने पर वह कार्य प्रायः सफल हो जाता है। व्रती के लिए संसार में कोई भी कार्य कठिन नहीं होता है, उसे सब कार्य सरल लगते हैं किन्तु अव्रती के लिए संसार में कोई भी काम सरल नहीं होता है, उसे सामान्य कार्य भी कठिन लगता है।

जीवन को सफल बनाने के लिए, प्रयोजनों, लक्ष्यों की सिद्धि के लिए अनेक साधनों की आवश्यकता होती है किन्तु उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण और प्राथमिक साधन दृढ़ संकल्प ही है। बिना व्रत के साधनों का संग्रह नहीं होता और बिना साधनों के साधना नहीं होती है और बिना साधना के कार्यों की सिद्धि नहीं होती है। मनुष्यों को वेदों में अनेक व्रतों को ग्रहण करने के लिए कहा गया है कि, हे मनुष्यो! ''व्रतं कृणुत अभिष्टये'' अर्थात् तू यदि अपने मन की इच्छाओं को पूरा करना चाहता है तो व्रतों को धारण कर, संकल्प ले। कहीं पर तो ऐसा भी कहा गया है कि ''अव्रतो अमानुषः'' जिस मनुष्य ने अच्छे कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अपने मन में प्रतिज्ञा नहीं की है, वह तो मनुष्य ही नहीं कहलाता है। मनुष्य तो वही कहलाता है जो उत्तम कार्यों को करने हेतु न केवल व्यक्तिगत अपितु सार्वजनिक रूप में घोषणा के साथ संकल्प धारण करता है।

प्रायः देखने में आता है कि मनुष्य संकल्प धारण करके भी उन्हें पूरा करने में सफल नहीं हो पाते हैं। थोड़े ही काल के पश्चात् वे उन्हें तोड़ देते हैं, छोड़ देते हैं, भूल जाते हैं, या आधा-अधूरा ही निभाते हैं। ऐसा एक बार नहीं अपितु अनेक बार होता है। व्रत लेते हैं और तोड़ देते हैं, फिर लेते हैं, फिर तोड़ देते हैं। इसका कारण है व्रतों को धारण करने से पूर्व, जिस उद्देश्य से सम्बन्धित व्रतों को मनुष्य धारण करता है, उनके विषय में वह गहराई से चिन्तन नहीं करता है, उस विषय की आवश्यकता, महत्ता, उपयोगिता के विषय में सूक्ष्मता से नहीं विचारता है। सामान्य रूप से किसी के कहने, उपदेश सुनने, पुस्तक पढ़ने, प्रेरणा देने, उत्साहित करने या तात्कालिक हानि को देखकर वह किसी कार्य को करने या न करने के लिए संकल्प ले लेता है। व्रत धारण करने के साथ वह यह नहीं विचारता है कि व्रतों को धारण करके चलते समय रास्ते में कितनी बाधाएँ आयेंगी, कितना विरोध होगा, कितने कष्ट उठाने होंगे, क्या मैं इन सब को सुलझाने अथवा सहन करने के लिए सुसज्जित हूँ? यदि पूर्व में ऐसा चिन्तन करके व्रत धारण करता है तो व्रत टिक जाते हैं। अन्यथा थोड़ी सी ही प्रतिकूलता, कष्ट, बाधा आने पर तत्काल व्यक्ति उन संकल्पों को त्याग देता है।

विवेकी व्यक्ति गहन चिन्तन करके जब एक बार किसी कार्य को करने या न करने का मन में संकल्प कर लेते हैं, तो कितने ही कष्ट क्यों न आयें अपितु प्राण भी क्यों न चले जायें, किन्तु वे अपने संकल्पों को नहीं तोड़ते हैं। यह बात निश्चित है कि सत्य, धर्म, आदर्श, नियमों को व्यवहार में उतारने वाले व्यक्ति को प्रारम्भ में कुछ कष्ट, बाधा, दुःख आते ही हैं किन्तु बाद में जब अभ्यास हो जाता है और वे नियम जीवन में स्वाभाविक रूप से ढल जाते हैं तो फिर उसे अलौकिक आनन्द आने लगता है, उसका जीवन पवित्र, सरल, प्रेरक, अनुकरणीय महान् बन जाता है।

हे प्रभो! हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमें भी अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए महान् व्रतों, संकल्पों को धारण करने की प्रेरणा प्रदान करो जिससे हम भी निम्न स्तर से उच्च स्तर को प्राप्त करें। इतना ही नहीं कभी भी, कहीं भी, किसी विषय में आलस्य-प्रमाद आदि के कारण अपने धारण किये हुए संकल्पों को शिथिल न करें, छोड़ें नहीं, भूलें नहीं, तोड़ें नहीं निरन्तर सत्य धर्माचरण के व्रतों को दृढ़ता के साथ पालन करते रहें, जब तक कि वे जीवन के अभिन्न अंग न बन जायें। यही आपसे प्रार्थना है।

आध्यात्मिकत्वम्

ले.-श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

महर्षि दयानन्द जी ने दो ही बात का प्रचार मुख्यतया किया है, 'ईश्वर और ईश्वरीय ज्ञान 'वेद' का'। इन्हीं को संसार भूल गया था। ईश्वर के स्थान में मानव को, तथा जड़ पदार्थों को ईश्वर मान बैठा था और वेद के स्थान में पुराण, कुरान, बाइबिल, आदि को ईश्वरीय ज्ञान मान बैठा था। जो सातवें, चौथे आसमान पर ईश्वर को मानते हैं, वे और अवतार मानने वाले तथा जीव को ही ब्रह्म मानने वाले ये सभी वास्तव में ईश्वर से शास्त्र-दृष्टि से अनभिज्ञ हैं। अतः आओ! आध्यात्मिक तत्त्व क्या है? इस पर शास्त्रीय विचार करें।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' (वेदान्त अ० १ पाद १ सूत्र १) अथ शब्द का अर्थ 'नित्यानित्य-वस्तु-विवेक इहामन्त्रार्थभागविरागः शमदमादि-साधनसम्पदत् मुमुक्षुत्वञ्चति'-पाठक विचार करें नित्य अनित्य क्या वस्तु है? परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति यह नित्य हैं। प्रकृति का कार्य संसार अनित्य है, न कि मिथ्या। अनित्य मिथ्या नहीं कहलाता यह वाक्य श्री शंकराचार्य जी महाराज का है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यह वेदान्त समुच्चय का वाक्य मिथ्या हो जाता है। यही कही उपचार से रागियों को वैराग्य दिलाने के लिये भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने कहा है

' न श्रुतिविरोधो रागिणामपि वैराग्याय तत् सिद्धेः'

(सां० अ० ६ सू० ५१)

अर्थात् रागियों को वैराग्य कराने के लिये संसार मिथ्या कहा है। इसी प्रकार जगन्मिथ्या शब्द का प्रयोग जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने किया है। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' यह वाक्य तो श्री शंकराचार्य जी के कथन से ही नितान्त मिथ्या है। पाठक देखें-

'उत्पत्त्यसंभवात्' वेदान्त २।२।४२ का भाष्य करते हुए भागवत वालों का खण्डन करते हैं।

''भागवानेव वासुदेवो निरञ्जनो ज्ञानस्वरूपः परमार्थतत्वम्, स चतुर्धात्मानं प्रविभज्य प्रतिष्ठितो वासुदेव-व्यूह-रूपेण संकर्षण-व्यूह-रूपेण प्रद्युम्न-व्यूह-रूपेणानिरुद्ध-व्यूह-रूपेण च, वासुदेवो नाम परमात्मोच्यते, संकर्षणो नाम जीवः प्रद्युम्नो नाम मनः, अनिरुद्धो नामाहङ्कारः। तेषां वासुदेवः परा प्रकृतिरितरे संकर्षणादयः कार्यम्। तमित्थं भूतं परमेश्वरं भगवन्तमभिगमनोपादाने-ज्यास्वाध्याययोगैर्वर्षशतमिष्ट्वा क्षीणक्लेशों भगवन्तमेष प्रतिपद्यत इति। तत्र यत्तावदुच्येत, योऽसौ नारायणः परोऽव्यक्तात् प्रसिद्धः परमात्मा सर्वात्मा स आत्मनाऽत्मानमनेकधा व्यूह्यावस्थित इति, तत्र निराक्रियते 'स एकधा भवति त्रिधा भवति' छान्दोग्य ७।२६।२ इत्यादिश्रुतिभ्यः परमात्मनोऽनेकधा भावस्या-धिगतत्वात्, यदपि तस्य भगवताऽभिगमनादिलक्षणमाराधन-भजस्रमनन्यचित्ततयाऽभिप्रेयते तदपि न प्रतिषिद्ध्यते। श्रुतिस्मृत्योरीश्वर-प्रणिधानस्य प्रसिद्धत्वाद्''।

पाठक विचार करें। भागवत वालों का मत प्रदर्शित करते हुए वासुदेव नाम परमात्मा से संकर्षण नाम जीव की उत्पत्ति होती है, यह सत्य नहीं किन्तु भगवत्पाद शंकराचार्य अपना मत प्रदर्शन करते हैं। वही प्रभु अपनी आत्मा से अनेक प्रकार की आत्माओं को रचकर ब्रह्मरूप अद्वैत है। अब भागवत् वालों का खण्डन स्पष्ट लिखते हैं-'यत्पुनरिदमुच्यते वासुदेवात् संकर्षण उत्पद्यते, संकर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नाच्चानिरुद्ध इति'' अर्थात् वासुदेव नाम परमात्मा से संकर्षण जीव की उत्पत्ति और संकर्षण जीव से प्रद्युम्न मन की और प्रद्युम्न मन से अनिरुद्ध अहंकार को उत्पत्ति, पूर्व-पूर्व कारण, उत्तरोत्तर कार्य।

'अत्र ब्रूमः-पाठक देखें, इस विषय में भगवान् शंकराचार्य की क्या सम्मति है ''न वासुदेवसंज्ञकात् संकर्षणसंज्ञकस्य जीवस्योत्पत्तिः सम्भवति। अनित्यत्वा-दिदोषप्रसङ्गाद्। उत्पत्तिमत्त्वे हि जीवस्यानित्यत्वादयोदोषाः प्रसज्येरन्। ततश्च नैवास्य भगवत्प्राप्तिर्मोक्षः स्यात्। कारणप्राप्तौ कार्यस्य प्रविलयप्रसङ्गात्। प्रतिषेधिष्यति चाचार्यो जीवस्योत्पत्तिम्-

''नात्मा श्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः' वेदान्त २।३।१७ इति। तस्मादसङ्गतैषा कल्पना''।

पाठक विचार करें पूर्वोक्त कथन से 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' इसका श्री शंकराचार्य जी स्वयं खण्डन करते हैं। अतः ब्रह्म की जिज्ञासा जीवात्मा को होती है, न कि ब्रह्म की ब्रह्म को, रहा यह वाक्य इहामन्त्रार्थभोग विरागः' अर्थात् इस लोक में परलोक में भोग से वैराग्य जीवात्मा को कहा है, न कि परमात्मा को, ईश्वर तो भोक्ता है ही नहीं।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन-श्नन्योऽभिचाकशीति।।

ऋग्वेद मं० १ सूक्त १६४ मं० २०

'अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।

श्वेताश्वेतर० अ० ४ मं० ५।।

वेद तथा उपनिषद् आदि शास्त्र जीवात्मा को ही भोगी और परमात्मा को भोग-रहित बतलाते हैं। अतः इस लोक और परलोक में भोग से विरक्त जीवात्मा को ही बताया है, न कि परमात्मा को, शमदमादि भी जीवात्मा को ही चाहिये, परमात्मा को नहीं। शेष रहा मुमुक्षुत्व, बद्ध को मोक्ष चाहिये न कि नित्य मुक्त परमात्मा को। 'नित्यमुक्तत्वम्' सां० अ० १ सू० १६३। अर्थात् ईश्वर तो नित्य मुक्त है, **' स तु सदैव मुक्तः'** योग भाष्य। बन्धमोक्ष जीवात्मा का होता है। पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' बृह० ३।२।१३ अर्थात् जीवात्मा पुण्य कर्म करता है तो सुखी और पाप करता है तो दुखी रहता है।

''ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वाद्' यो० २.१४. भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'' योग दर्शन। जीवों के सुख दुख भोगार्थ और मोक्षार्थ सृष्टि की रचना की है।

जन्माद्यस्य यतः वे० द० १।१।२

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। योगदर्शन। कर्माध्यक्षः सर्वाभूताधिवासः साक्षी। श्वेताश्वेतर ६।११। स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् यजु० ४०।८

परमात्मा को साक्षी महर्षि कपिल ने भी कहा है साक्षात्सम्बन्धात् साक्षित्वम् सां० १।१६२ वेदों में जहां परमात्मा की चर्चा है, वहां सर्वत्र एक वचन है। यथा हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्, स नो बन्धुर्जनिता, पतिरक्षक एक था। 'सः' यहाँ पर एक वचन, 'जनिता एकवचन ''धियो यो नः प्रचोदयात्'' ''स्याम पतयो रयीणाम्''। जीवात्मा अनेक हैं इसलिये 'नः' 'पतयः' इत्यादि बहुवचन प्रयोग है। दर्शनों में भी 'पुरुष-विशेष ईश्वरः, योग। फलमत उपपत्तेः वेदा० ३।२।३८। नेश्वराधिष्ठिते फलानिष्पत्तिः कर्मणा तत् सिद्धेः सां० ५।२। ईश्वरः कारणं पुरुष कर्माफल्यदर्शनाद्, न्याय ४।१९। न पुरुष कर्माभावे फलनिष्पत्तिः, न्याय ४।२०। तत्कारितत्वाः दहेतुः, न्या. ४।२१। अर्थात् बिना कर्म किये ईश्वर फल नहीं देता, फलप्रदाता एक ईश्वर है ऐसा गौतम ऋषि मानते हैं। 'लोके कर्माणि वेदवत् ततोऽधिपुरुषज्ञानम्, मीमांसा अ० ६।१७। अर्थात् लोक हैं मनुष्य कर्म करते हैं, फल ईश्वर से प्राप्त करते हैं ऐसा जैमिनि ऋषि मानते हैं। श्री शंकराचार्य जी महाराज ने वेदान्त भाष्य में प्रायः सर्वत्र ईश्वर जीव प्रकृति त्रैतवाद सिद्ध किया है। पाठक उपोद्घात देखें। अध्यास कब से है-''एवमयमनादिरनन्तो नैसर्गिको ध्यासो मिथ्या-प्रत्ययःरूपः कर्तृत्वभोक्तृत्वप्रवर्त्तकः सर्वलोकप्रत्यक्षः। अस्यानर्थहेतोः प्रहाणायात्मैकत्व-विद्या-प्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्ते। यथा चायमर्थः सर्वेषां वेदान्मतानां तथा वयमस्यां शारीरिकमीमांसायां

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

सत्यार्थ प्रकाश में मोक्ष प्राप्ति का वर्णन

महर्षि देव दयानन्द से पूर्व भी यहां पर वेदों के भाष्य प्रचलित थे लेकिन उन भाष्यों का पढ़ना केवल मात्र रूढ़ि शब्दों के जाल में फंसना फंसाना ही मुख्य कार्य बन गया था। जन सामान्य के लिये वेदों का पठन-पाठन न होकर किसी वर्ण विशेष के लिये ही रह गया था। बाबा वाक्य प्रमाण जैसी उक्तियों को समाज में फैला कर पाखण्ड़ फैलाया जा रहा था जिन बड़े से बड़े धार्मिक कर्मकांडों को दिखाया जाता था वह सब अलग-अलग वर्णों के लिये प्रचारित व प्रसारित थे। विद्या जहां मोक्ष प्राप्ति का साधन मानी जाती थी वहीं विद्या व वेद के नाम से लोगों को फंसाया जाता था। कुछ ही लोगों को मुक्ति का अधिकारी माना जाता था परन्तु महर्षि दयानन्द जी ने सबसे स्टीक व प्रमाणिक उक्तियों से वेदों की ओर लौटने का नारा देते हुये वेद मार्ग पर चलते हुये ही वास्तविक मुक्ति का साधन अपने अमर ग्रंथ में सरल ढंग से बताया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में मुक्ति के साधनों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों का फल दु:ख है, उनको छोड़ सुखरूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दु:ख को छोड़ना और सुख को प्राप्त करना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्योंकि दु:ख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

सत्पुरूषों के संग से विवेक अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय अवश्य करें, पृथक्-पृथक् जानें। और शरीर अर्थात् जीव पञ्चकोषों का विवेचन करें। एक अन्नमय जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। दूसरा प्राणमय जिसमें प्राण अर्थात् जो भीतर से बाहर जाता, अपान जो बाहर से भीतर आता, समान जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता, उदान जिस से कण्ठस्थ अन्न पान खींचा जाता और बल पराक्रम होता है, व्यान जिस से सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। तीसरा मनोमय जिसमें मन के साथ अहङ्कार, वाक्, पाद, पाणि, पायु, और उपस्थ पांच कर्म-इन्द्रियां हैं। चौथा विज्ञानमय जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञानेन्द्रियां जिन से जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पांचवा आनन्दमय कोश जिसमें प्रीति प्राप्तता, न्यून आनन्द, अधिकानन्द, आनन्द और आधार कारण रूप प्रकृति है। ये पांच कोष कहाते हैं। इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

तीन अवस्था -एक जागृत, दूसरी स्वप्न और तीसरी सुषुप्ति अवस्था कहाती है। तीन शरीर हैं-एक स्थूल जो यह दीखता है। दूसरा पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां,पांच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इसके दो भेद हैं- एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप है। यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है। तीसरा कारण जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है। चौथा तुरीय शरीर वह कहाता है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्दस्वरूप में मग्न जीव होते हैं। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।

इन सब कोष अवस्थाओं से जीव पृथक् है, क्योंकि यह सब को विदित है कि अवस्थाओं से जीव पृथक् है। क्योंकि जब मृत्यु होती है तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया। यही जीव सबका प्रेरक, सब का धर्त्ता, साक्षीकर्त्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता भोक्ता नहीं तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है। क्योंकि बिना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं इन को सुख दु:ख का भोग वा पाप पुण्य कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हां इन के सम्बन्ध से जीव पाप पुण्यों का कर्त्ता और सुख दु:खों का भोक्ता है।

जब इन्द्रियां अर्थों में मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय शंका लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दु:ख भोगता है। दूसरा साधन वैराग्य-अर्थात् जो विवेक से सत्यासत्य को जाना हो उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना विवेक है- जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर उसकी आज्ञा का पालन और उपासना में तत्पर होना, उसके विरूद्ध न चलना, सृष्टि से उपकार लेना विवेक कहाता है।

तत्पश्चात तीसरा साधन-षट्क सम्पत्ति अर्थात् छ: प्रकार के कर्म करना-एक शम जिससे अपने आत्मा और अन्त:करण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में प्रवृत्त रखना। दूसरा दम जिससे श्रोत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटा कर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना। तीसरा उपरति जिस से दुष्ट कर्म करने वाले पुरूषों से सदा दूर रहना। चौथा तितिक्षा चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु शोक हर्ष को छोड़ मुक्ति साधनों में सदा लगे रहना। पांचवा श्रद्धाजो वेदादि सत्य शास्त्र और इनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान् सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना। छठा समाधान चित्त की एकाग्रता ये छ: मिलकर एक साधन तीसरा कहाता है।

चौथा मुमुक्षुत्व-अर्थात् जैसे क्षुधा तृषातुर को सिवाय अन्न जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता वैसे बिना मुक्ति के साधन और मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना। ये चार साधन और चार अनुबन्ध अर्थात् साधनों के पश्चात ये कर्म करने होते हैं। इनमें से जो एक इन चार साधनों से युक्त पुरूष होता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है। दूसरा सम्बन्ध-ब्रह्म की प्राप्ति रूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि शास्त्र प्रतिपादक को यथावत् समझ कर अन्वित करना। तीसरा विषयी-सब शास्त्रों का प्रतिपादन विषय ब्रह्म उसकी प्राप्तिरूप विषय वाले पुरूष का नाम विषयी है। चौथा प्रयोजन-सब दु:खों की निवृत्ति और परमानन्द को प्राप्त होकर मुक्ति सुख का होना। ये चार अनुबन्ध कहाते हैं।

तदनन्तर श्रवणचतुष्टय अर्थात् एक श्रवण- जब कोई विद्वान् उपदेश करे तब शान्त, ध्यान देकर सुनना, विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में अत्यन्त ध्यान देना चाहिए कि सब विद्याओं में सूक्ष्म विद्या है। सुन कर दूसरा मनन अर्थात् एकान्त स्थान में बैठ के सुने हुए पर विचार करना। जिस बात में मन में शंका हो पुन: पूछना और सुनते समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझे तो पूछना और समाधान करना। तीसरा निदिध्यासन जब सुनने और मनन करने से निसन्देह हो जाए तब समाधिस्थ होकर उस बात को देखना समझना कि वह जैसा सुना था विचारा था वैसा ही है वा नहीं ध्यानयोग से देखना। चौथा साक्षात्कार अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप गुण और स्वभाव हो वैसा यथातथ्य जाने लेना ही श्रवणचतुष्टय कहाता है।

इतनी सरल व सरस ज्ञान की बातों को जनमानस तक पहुंचाने के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का ऋण सम्पूर्ण मानव जाति पर है। किसी विद्वान ने कहा है कि यदि सत्यार्थ प्रकाश को किशोर पढ़ें तो उनके जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा। उन्हें अपना शारीरिक व बौद्धिक विकास करने की प्रेरणा मिलेगी। यदि इसे तरूण पढ़े तो इससे निर्दिष्ट जीवन दिशा के द्वारा अपना भविष्य बना सके। गृहस्थ व प्रौढ़ जन पढ़े तो जीवन यापन करते समय व्यवहार में आने वाली त्रुटियों को जान कर सुधार कर सकें। सभी वर्णों व आश्रमों के लोग पढ़ें ताकि अपनी बुद्धि, योग्यता व सामर्थ्य के अनुसार अपने किये कर्मों का स्मरण कर आगामी जीवन को उत्तम बनाने का प्रयास कर सकें।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

समाज के शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति में आर्य समाज की भूमिका

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा 10 अप्रैल 1875 को मुम्बई में गिरगांव मोहल्ले में डॉक्टर माणकचन्द्र की वाटिका में हुई। उस समय देश की स्थिति करूणाजनक थी। लोगों का स्वास्थ्य अत्यन्त गिरा हुआ था। मनुष्य की औसत आयु मात्र 25 वर्ष के लगभग थी। देश में चारों तरफ गरीबी का ताण्डव नृत्य हो रहा था। लोगों को भरपेट अन्न मिलने की बात तो छोड़ दो कई अवसर पर लाश पर डालने के लिए वस्त्र तक मिलना कठिन हो जाता था। छोटी आयु में विवाह होते थे और 10 में से 5 स्त्रियां प्रथम प्रसव काल में ही मृत्यु का आलंगन कर लेती थी। नवजात 10 शिशुओं में से 7 शिशुओं की मृत्यु 5 वर्ष की आयु तक पहुंचते-पहुंचते हो जाती थी। जो बच जाते थे वे भी स्वास्थ्य की दृष्टि से गिरी हुई स्थिति के ही होते थे। बेरोजगारी के कारण अधिकांशजन एक समय भी ठीक से भोजन नहीं प्राप्त कर पाते थे।

अस्वस्थ होने पर इलाज की भी कोई ठीक व्यवस्था नहीं थी। 1000 घरों की बस्ती तक में कोई राजकीय अस्पताल नहीं मिलता था। आवगमन के साधन केवल बैलगाड़ी अथवा घोड़ा ही थे। वर्षा के दिनों में ये भी कार्य नहीं कर पाते थे। डाक की भी कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। शिक्षा 1 प्रतिशत के लगभग थी। 500 घरों की बस्ती में 1-2 व्यक्ति ही मामूली पढ़े लिखे मिलते थे। वे भी केवल सामान्य पत्र लिखना अथवा पढ़ना भर ही जानते थे। पाठशालाओं की संख्या नगण्य थी। पूरे देश में एक भी विश्वविद्यालय नहीं था। महाविद्यालय भी 4-5 ही थे। कक्षा 8 अथवा कक्षा 10 तक पढ़ लेने वाला व्यक्ति तो बहुत अधिक विद्वान् माना जाता था। सामान्य कस्बों में कक्षा 3 तक की पढ़ाई होती थी और प्रधानाध्यापक केवल कक्षा 5 तक शिक्षित होते थे। शहरों में भी कहीं-कहीं कक्षा 10 तक की पढ़ाई होती थी। ऐसे विद्यालयों की संख्या भी दहाई के अंक में ही समायी हुई थी। देश में कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त कोई भी अन्य उद्योग नहीं था। व्यापार भी नाम मात्र का था। कस्बों में कुछ दुकानें होती थी जो दैनिक उपयोग की वस्तुएं रखती थी। ऐसी स्थिति में अंधविश्वास, कुरीतियों का देशभर में फैला रहना स्वाभाविक था। वृद्धकुरूप महिलाओं को डायन समझा जाता था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने देश में यह स्थिति देख ली थी। इस स्थिति को बदल देने की उन्होंने मन में ठान ली थी। उन्होंने देश भर में घूम-घूम कर अंधविश्वासों, कुरीतियों, मूर्तिपूजा और छूआ-छूत के विरूद्ध व्याख्यानों द्वारा लोगों का ध्यान खींचा। उन्होंने अनुभव किया कि वेद ज्ञान के अभाव में इनसे मुक्ति पाना असंभव है। इस हेतु उन्होंने कुछ पाठशालाएं स्थापित की। परन्तु योग्य अध्यापकों के अभाव में उन्होंने शीघ्र ही बंद भी कर दिया। स्वामी जी को अपने जीवन काल में ऐसे शिष्य प्राप्त नहीं हुई थे। जो उनके कार्य के मर्म को समझकर अपना सम्पूर्ण जीवन उसी में लगा देते वे स्वयं भी लगातार वेदों के भाष्य, दर्शन, संस्कार आदि अनेक विषयों में व्यस्त थे। उन्हें लगातार हिन्दुओं, जैनियों, मुसलमानों और ईसाइयों से शास्त्रार्थ भी करना पड़ता था। इसके लिए विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के ग्रन्थों का उन्हें अध्ययन भी करना होता था। परन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त एक दम स्थिति में परिवर्तन आया। पंजाब एवं पश्चिम उत्तर प्रदेश में उनके अनुयायियों के प्रसार-प्रसार हेतु कुछ ठोस निर्णय लेकर उन पर कार्यारम्भ कर दिया।

सर्व प्रथम 19वीं सदी के अन्तिम दशक में लाला साईं दास, लाला मूलराज, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, गुरूदत्त विद्यार्थी आदि ने मिलकर D.A.V. संस्थान स्थापना कर लाहौर में विद्यालय प्रारम्भ कर दिया। महात्मा हंसराज इस महाविद्यालय के प्रचार्या नियुक्त हुए उन्होंने बिना किसी वेतन के जीवन भर इस पद पर कार्य कर महाविद्यालय को अविश्वसनीय ऊंचाई पर पहुंचा दिया। इस महाविद्यालय में वैदिक ज्ञान के अतिरिक्त आधुनिक महत्ता के सभी विषय पढ़ाये जाते थे। प्रारम्भ से ही अंग्रेजी पर अधिक ध्यान दिया जाता था। स्वामी श्रद्धानन्द ने भी प्रारम्भ में इस महाविद्यालय के लिए चंदा एकत्रित करने में योगदान दिया परन्तु उन्होंने जब देखा कि यहां वैदिक ज्ञान पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है तो वे इससे अलग हो गये तथा उन्होंने बीसवीं सदी के ठीक प्रारम्भ सन् 1902 में गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना कर दी जिसमें वैदिक ज्ञान, आयुर्वेद, कृषि विज्ञान, दर्शन शास्त्र पर अधिक ध्यान दिया गया। दोनों प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का देश में स्वागत हुआ। थोड़े ही समय में देश भर में जगह-जगह D.A.V. स्कूल की शाखाएं तथा गुरूकुलों की स्थापना हो गई। इससे शिक्षा का प्रचार हुआ। गुरूकुलों ने कई उच्च स्तर के वैदिक विद्वान् दिये। देश भर में वेदालंकार, सिद्धान्तालंकार, वाचस्पति शास्त्री लोग अज्ञानान्धकार को दूर करने में लग लगे। देश का मीडिया भी इन्हीं लोगों से भर गया। अधिकतर बड़े समाचार पत्रों के सम्पादक भी यही लोग बने। आयुर्वेद को इन्हीं लोगों ने नया जीवन दिया। फिर इस क्षेत्र में महात्मा स्वतंत्रानन्द, सर्वानन्दजी, आत्मानन्दजी, दर्शनानन्द, इन्द्र विद्यावाचस्पति-राजगुरू धुरेन्द्र शास्त्री, बुद्धदेव वेदालंकार आदि कई महानुभावों का आगमन हुआ। आर्य समाजों ने भी विद्यालय प्रारम्भ किये। D.A.V. स्कूल की शाखाएं देश भर में ही नहीं वरन् इग्लैंण्ड, अमेरिका तथा रूस में भी कार्यरत है। भारत में सरकार के बाद आर्य समाज के विद्यालय ही सर्वाधिक है। फलस्वरूप साक्षरता 1 प्रतिशत से बढ़कर आज 65 प्रतिशत से अधिक हो गई है। राजस्थान में हीरालाल शास्त्री व जियालाल ने शिक्षा संस्थान खोले। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से कई अंधविश्वासों, कुरीतियों छूआ-छूत आदि का उन्मूलन हुआ है। शिक्षा संस्थानों के अतिरिक्त आर्य समाज के कुछ विद्वानों उपदेशकों यथा गणपति शास्त्री, स्वामी विश्वेश्वरानन्द, स्वामी नित्यानन्द, मनसाराम, शान्ति स्वरूप बुद्धदेव वेदालंकार, बुद्धदेव मीरपुरी, आचार्य विश्वश्रवा, पण्डित बिहारीलाल, रामचन्द्र देहलवी ज्ञानेन्द्र सूफी आदि ने देश भर में घूम-घूम कर वैदिक सिद्धांतों का प्रचार तथा वेद विरोधी लोगों से शास्त्रार्थ कर देश में वैदिक ज्ञान का आलोक फैलाया। इससे हिन्दुओं में अपने धर्म और संस्कृति पर गर्व होने लगा। धर्मान्तरण कम होने लगा। किसी भी धर्म की नींव दर्शन पर आधारित होती है। आर्य समाज ने गंगाप्रसाद उपाध्याय, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी आत्मानन्दजी, उदयवीर शास्त्री, प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, प्रो. रत्नसिंह ठाकुर अमर सिंह, बुद्धदेव वेदालंकार आदि अनेक दार्शनिकों को भी जन्म दिया जिन्होंने तर्कों की झड़ी लगा कर वैदिक दर्शन की महत्ता सिद्ध की।

इस सारे प्रचार के फलस्वरूप लोगों में चेतना आई और शिक्षा के कारण उनकी आय में भी वृद्धि हुई। उनका ध्यान स्वास्थ्य के नियमों की तरफ भी गया। फल स्वरूप धीरे-धीरे मनुष्य की औसत आयु में भी वृद्धि होती गई। आज देश की औसत आयु 67 वर्ष से अधिक हो गई है इसमें आर्य समाज का पर्याप्त योगदान रहा है। श्री हरबिलास शारदा के अथक परिश्रम से बाल विवाह के विरोध में शारदा एक्ट बना जिसके द्वारा 14 वर्ष से कम आयु की बालिका और 16 वर्ष से कम आयु के बालक का विवाह कानून अपराध माना गया। और अब 18 वर्ष से कम की लड़की तथा 21 वर्ष से कम के लड़के का विवाह कानून अपराध माना जाता है। इसी प्रकार आर्य समाज के प्रयास से बड़ोदरा एवं इंदौर राज्य में छुआ-छूत कानून बन्द कर दी गई और सार्वजनिक कुवे, बावड़ी, धर्मशाला, मन्दिर विद्यालय आदि में बिना किसी भेद-भाव के सभी को प्रवेश मिल गया और अब स्वाधीन भारत के संविधान में भी इसे अपराध मान लिया गया है। आर्य समाज के प्रारम्भिक प्रचारकों ने अपने बालक बालिकाओं के विवाह जाति के बंधन तोड़ कर किये। अपने घर पर भी मृत्यु भोज नहीं किया और मृत्यु भोज में सम्मिलित भी नहीं हुए। उन्होंने जैसा प्रचार किया उसी को स्वयं के जीवन में भी उतारा। यदि उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया तो क्षेमचन्द्र त्रिवेदी जैसे व्यक्ति ने आवश्यकता न होते हुए भी विधुर होने पर विधवा विवाह किया। इससे आर्य समाज की प्रतिष्ठा में वृद्धि ही हुई। जगह-जगह आर्य समाजों ने अछूत लोगों के साथ मिलकर सहभोज किया। इस पर कई लोगों को जाति से बहिस्कृत कर दिया गया परन्तु उन्होंने हार नहीं मानी। स्त्री एवं शूद्रों को भी वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं दिया वरन् कन्या गुरूकुलों की स्थापना कर स्त्रियों को भी बिना किसी भेद-भाव के वेदाध्ययन कराया। गुरूकुलों में किसी छात्र को जाति के आधार पर प्रवेश नहीं दिया जाता था। आर्य समाज ने जगजीवन राम तथा भीमराव अम्बेडकर का भी उचित सम्मान किया और समय-समय पर उनकी सहायता भी की।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

कल्याणकारी विपत्ति

ले.-श्री नरेन्द्र आहूजा

यह सुनकर भी घोर आश्चर्य होता है कि विपत्ति भी कल्याणकारी हो सकती है परन्तु इस आश्चर्य का कारण हमारी अज्ञानता है। खुद पर आई हुई विपत्ति, दुख, कष्ट, कलेश के समय अपनी अज्ञानता व आत्मिक दुर्बलता के कारण विचलित हो जाते हैं। विपत्ति का कारण हमें ज्ञात नहीं होता इसीलिए हम सोचते हैं कि परमपिता परमेश्वर न्यायकर्ता ने न जाने क्यों मुझे यह दुख प्रदान किया। कई बार तो धैर्य न होने के कारण विपत्ति काल में हमारा विश्वास ईश्वर की सत्ता से उठ जाता है। विपत्ति के कारण का ज्ञान न होना ही हमारे दुख को और अधिक बढ़ाता चला जाता है। हम अक्सर परमपिता परमेश्वर की न्याय व्यवस्था से विश्वास हटाकर ईश्वर पर पक्षपाती होने का आरोप लगाने लगते हैं। हम अक्सर यह सोचते हैं कि हमने तो कोई अपराध किया नहीं फिर किस कर्म के फलस्वरूप यह दुखरूपी दण्ड हमें मिल रहा है। हम अल्पज्ञ हैं यह आवश्यक नहीं कि हमें ईश्वर के प्रत्येक कार्य का कारण ज्ञात हो। वहीं ईश्वर सर्वज्ञ एवं सार्वकालिक दृष्टा होने के कारण हमारे सभी जन्मों के कर्मों को जानते हैं। कर्मफल व्यवस्था के अन्तर्गत न्यायकर्ता परमेश्वर न जाने कब किस संचित कर्म का फल दण्ड अथवा पुरस्कार के रूप में हमें प्रदान करे। हमें यह समझना होगा कि कभी भी कोई भी विपत्ति अकारण नहीं आती बस इतना अवश्य है कि अल्पज्ञ एवं एकदेशीय होने के कारण हमें विपत्ति के कारण का ज्ञान नहीं होता। मनुष्य अक्सर विपत्ति के समय धैर्य खोने के उपरांत ईश्वर पर से विश्वास खोकर दुख के भँवर से निकलने के लिए हाथ पैर मारने लगता है और दुख के भँवर में और अधिक डूबता चला जाता है।

विपत्ति के समय हमारे धैर्य एवं विश्वास की परीक्षा होती है। यदि हम व्यापक दृष्टि से देखें तो आने वाली छोटी बड़ी विपत्तियाँ हमारे लिए बहुत लाभकारी होती हैं। शायद ही कोई इस बात पर विश्वास करेगा कि विपत्ति कल्याणकारी होती है लेकिन यह ध्रुव सत्य है। हर विपत्ति कष्ट कलेश या दुख हमारे पूर्व में किए गए किसी जाने अनजाने दुष्कर्म के बंधन को काट देती है। ये दुष्कर्मों के बंधन जिनका फल प्रत्येक जीवात्मा को परमपिता परमेश्वर की न्यायव्यवस्था के अधीन अवश्य भोगना होता है और पापकर्म के फलस्वरूप मिलने वाले दण्ड रूप विपत्ति को भोगने के उपरांत जीवात्मा पर पड़े उस कर्म के बंधन टूट जाते हैं। विपत्ति न केवल हमें पूर्व के कर्म बंधनों से मुक्त करती है अपितु विपत्ति हमें भविष्य के लिए उन पाप रूपी कर्मों से दूर रहने के लिए सचेत भी करती है। परमपिता परमेश्वर एक सच्चे मित्र की भांति हमें ये विपत्तियाँ देकर दुष्कर्म करने से रोकने का प्रयास करते हैं। अथर्ववेद में परमात्मा के सच्चे मित्र होने की पुष्टि **''इन्द्रस्य युज्यः सखा''** द्वारा की गई है। इस प्रकार ईश्वरीय न्यायव्यवस्था के दण्ड में भी उसकी अपार दयालुता एवं करूणा छिपी हुई है जिसे हम अपनी अज्ञानता एवं अविश्वास के कारण देख नहीं पाते।

विपत्ति जहाँ पूर्व के कर्म बंधनों को काटती है, हमें दुष्कर्मों से बचाते हुए सदकर्मों की ओर चलने की प्रेरणा देती है वहीं ये विपत्तियां ईश्वरीय न्यायव्यवस्था पर पूरे समाज का विश्वास और दृढ़ भी करती हैं। किसी दुष्कर्मी को मिलने वाले ईश्वरीय दण्ड को देखकर सम्पूर्ण समाज को पापरूपी कर्मों से दूर रहने की प्रेरणा देती हैं। **''भय बिनु होत न प्रीत''** विपत्तियाँ कई बार हमारा विश्वास परमपिता परमेश्वर पर और अधिक दृढ़ कर देती हैं। इन दुखों से हमारे धैर्य की परीक्षा होती है तथा हमारे अन्दर हिम्मत तथा प्रभु पर विश्वास और अधिक बढ़ जाता है।

विपत्ति के समय हमें अक्सर अपने मित्रों रिश्तेदारों की याद आती है। दुख के समय ही सच्चे साथियों की परीक्षा भी हो जाती है। **''सुख के सब साथी दुख में न कोय''** विपत्ति में साथ देने वाला मित्रता की कसौटी पर खरा उतरता है और यदि व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो परमात्मा ही जीवात्मा का सच्चा मित्र होता है। शायद इसीलिए विपत्ति आने पर प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर की याद स्वयमेव आती है। विपत्तियाँ हमें परमपिता परमेश्वर की सदैव स्तुति, प्रार्थना, उपासना करने की प्रेरणा देती हैं।

''दुख में सुमिरन सब करैं सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै दुख काहे को होय।।''

विपत्ति के उपरांत ही मनुष्य सुख दुख प्रत्येक स्थिति में समभाव से ईश्वर का स्मरण करता है।

विपत्ति हमारे अन्दर धैर्य बढ़ाकर ईश्वर पर विश्वास को दृढ़ करती हुई दुष्कर्मों से हटाकर सत्कर्मों की ओर प्रेरित करती है वहीं साथ ही साथ हमारे अन्दर संघर्ष की क्षमता को भी बढ़ाती है। जिस प्रकार किसी संक्रामक रोग से बचाव के लिए उस रोग के कुछ थोड़ी मात्रा में विषाणु वैक्सीन के रूप में दिए जाते हैं जिसके कारण शरीर में होने वाले एंटीजन एंटीबॉडी रिएक्शन से शरीर की उस रोग के प्रति प्रतिरोधक क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि वह व्यक्ति वैक्सीन लेने के उपरांत उस रोग से ग्रसित नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार कल्याणकारी प्रभु अपनी न्यायप्रियता के साथ दयालुता दिखाते हुए हम मनुष्यों को वैक्सीन रूपी विपत्ति देकर हमारी दुखों की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा देते हैं।

विपत्ति हमारे लिए उस ईश्वरीय यज्ञ की अग्नि के समान होती है जिसमें हमारे साथ सांसारिक मोह माया ईर्ष्या द्वेष लोभ आदि के सब अवशिष्ट पदार्थों को जलाकर राख कर देती है वहीं यज्ञ में आहूत अग्निरूप हुई समिधा के समान हमें शुद्ध करके धैर्य, शक्ति, साहस जैसे गुणों से समाहित करती है। हर विपत्ति देव दयानन्द के प्रिय मंत्र **''विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यदभद्रं तन्न आसुव''** को हमारे जीवन में चरितार्थ कर देती है क्योंकि विपत्ति की अग्नि में जलकर हमारे दुर्गुण दुर्व्यसन भस्म हो जाते हैं और हमारे अन्दर शुद्ध अन्तःकरण में सद्गुण समा जाते हैं।

हमें विपत्ति देने वाला यदि परपीड़ा में सुख अनुभव करता है तो भी हमें उस पर दया आती है क्योंकि ईश्वरीय न्यायव्यवस्था के अन्तर्गत जिस छोटे कष्ट क्लेश या विपत्ति को अपने किसी पूर्व के दुष्कर्म के फलस्वरूप हम भोग रहे हैं वह परपीड़क आनन्द लेने वाला दुष्कर्मी कैसे ईश्वरीय न्यायव्यवस्था से बच सकता है। शायद इसीलिए अब हमारे अन्दर अपने प्रति द्वेष रखने वाले उस परपीड़क दुष्कर्मी के विरूद्ध प्रतिक्रियास्वरूप भी कोई द्वेषभाव उत्पन्न नहीं होता अपितु उसके भविष्य की सोचकर उस मन में दया का भाव जागृत होता है।

इस प्रकार विपत्ति हमारे लिए अत्यंत कल्याणकारी सिद्ध होती है क्योंकि इससे जहाँ हमारा ईश्वर की न्यायव्यवस्था पर विश्वास सुदृढ़ होता है वहीं विपत्ति हमारे पूर्व में किए किसी दुष्कर्म के बंधन को काटती हुई हमें वर्तमान में सत्कर्म करने की प्रेरणा देती है तथा हमारे अन्तर्मन से समस्त दुर्भावनाओं काम क्रोध लोभ मोह आदि कलुषित भावनाओं को भस्म करती हुई सद्गुणों को समाहित करती है। दयालु प्रभु द्वारा प्रदत्त कल्याणकारी विपत्ति मनुष्य को संघर्ष की अग्नि में तपाकर सोने से कुंदन बना देती है।

आर्य समाज जंडियाला गुरु में यजुर्वेद परायण यज्ञ

आर्य समाज जंडियाला गुरु जिला अमृतसर की ओर से महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जन्म जयंती पर यजुर्वेद परायण यज्ञ का आयोजन किया जा रहा है जो 11 मई से 14 मई 2023 रविवार तक धूमधाम से मनाने का निर्णय किया गया है जिसमें वैदिक प्रवक्ता आचार्य सानन्द जी पानीपत से और भजनोपदेशक श्री दिनेश पथिक जी अमृतसर पहुंच रहे हैं। यह यज्ञ आप सब के सहयोग से ही पूर्ण होगा इसलिये आप सबसे निवेदन है कि आप तन, मन और धन से यजुर्वेद परायण यज्ञ को सम्पन्न करवाने में सहयोग करें।

-प्रधान आर्य समाज जंडियाला गुरु

पृष्ठ 5 का शेष-समाज के शारीरिक...

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह भी अनुभव किया कि हमारी पतनावस्था का एक कारण विदेशी शासन भी है। इनके कारण ही हमारे देश के कुटीर उद्योग बन्द हुए और इन्होंने कोई नया उद्योग लगने ही नहीं दिया। हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को भी इन्होंने नष्ट कर दिया है। ये गरीब हिन्दुओं को बहका कर ईसाई बना रहे हैं और धर्मान्तरण के साथ राष्ट्रीयता की भावना भी लुप्त होती जा रही है। अत: अत्यन्त आवश्यक है कि यहां से विदेशी शासन समाप्त हो इसलिए उन्होंने देश में राष्ट्रीय भावना भरने का कार्य भी किया। सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में विकेन्द्रीकृत शासन की रूपरेखा रखी। फिर सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास में वे पराधीनता के कारण बताते हुए लिखते हैं आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई दोष नहीं दीखता। जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दु:ख परस्पर न माने तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाने पीने से ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता। किन्तु जब तक बुरी आदतें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण, आपस की फूट मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, जब आपस में भाई-भाई लड़ते है तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है।... परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो गया।

फिर उन्होंने अपने यजुर्वेद के भाष्य में तथा आर्याभिविनय में कई स्थानों पर विदेशी शासकों को कर न देना तथा उन्हें शासक मानने से भी अस्वीकार करने को लिखा। यजुर्वेद अध्याय 9 मंत्र संख्या 17 के भाष्य के भावार्थ में वे लिखते हैं, जो ये राजपुरूष हमसे कर लेते हैं वे हमारी निरन्तर रक्षा करें नहीं तो न लें हम भी उनको कर न देवें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिए ही कर देना चाहिए अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं यह निश्चित है। फिर इसी अध्याय के मंत्र संख्या 21 में वे लिखते हैं, मैं ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता हूँ कि तुम लोग मेरे तुल्य धर्म युक्त गुण, कर्म, और स्वभाव वाले पुरूष ही की प्रजा होओ अन्य किसी क्षुद्राशय पुरूष की प्रजा होना स्वीकार मत करो। जैसे मुझ को न्यायाधीश मान मेरी आज्ञा से वर्त और अपना सब कुछ धर्म के साथ संयुक्त करके इस लोक और परलोक के सुख को नित्य प्राप्त होते रहो, वैसे जो पुरूष धर्मयुक्त न्याय से तुम्हारा निरन्तर पालन करे उसी को सभापति राजा करो। इसमें उन्होंने विदेशी शासक को मानने से अस्वीकार करने तथा अपने शासक स्वयं चुनने की प्रेरणा दी है। इसी प्रकार आर्याभिविनय में **'त्वं न: सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायत्।' न रिष्येत्त्वावत: सखा।** मंत्र का पदार्थ इस प्रकार किया है- '(त्वम्) तुम (न:) हमारी (सोम) हे सोम राजन्। ईश्वर। (विश्वत:) सब प्राणियों से (रक्षा) रक्षा करो (राजन्)हे राजन् ईश्वर। (अघायत:) पापी और पाप की इच्छा करने वालों से (न) कभी नहीं (रिष्येत्) विनष्ट होता (त्वावत:) जिसके आप सगे (सखा) मित्र।' इस मंत्र में यह कहकर उत्साहित किया है कि हमारा राजा तो ईश्वर है अत: यह कभी भी नष्ट नहीं हो सकते। फिर ऋग्वेद के मंत्र-**त्वमसि विदथेषु सहन्त्य। अग्ने रथीरध्वराणाम्।** में बताया गया है कि अन्त में विजय हमारे साथ है फलस्वरूप जब देश की स्वधीनता का संग्राम प्रारम्भ हुआ तो आर्य समाज के सदस्य ही अग्रिम पंक्ति में रहे हैं। श्याम जी कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द लाला हरदयाल ने तो विदेशों में जाकर भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में कार्य किया है। देश में लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी स्वतंत्रतानन्द, इन्द्रविद्या वाचस्पति, अलगूराय शास्त्री, नरदेव शास्त्री, कुम्भाराम आर्य, हीरालाल शास्त्री, नरेन्द्र जी हैदराबाद, राजा महेन्द्र प्रताप, लालाभीमसेन आदि ने कांग्रेस के सत्याग्रहों में भाग लेकर जेल यातना भोगी। राजा महेन्द्र प्रताप तो विदेशों में जब स्वतंत्रता प्रेमियों ने प्रवासी सरकार की स्थापना की तब राष्ट्रपति बनाये गए थे। सरदार भगत सिंह, रामप्रसाद विस्मिल, राजगुरू सुखदेव सुखदेव, उधमसिंह, मेवालाल दीक्षित, रोशन सिंह आदि कई लोगों ने हंसते-हंसते फांसी के फंदे को चुम कर अपना प्राण स्वाधीनता हेतु भेंट किया। अंग्रेज सरकार की दृष्टि से आर्य समाज का यह कार्य छिपा न रहा। आर्य समाज को शीघ्र ही कुचल डालने का अवसर भी उन्हें मिल गया। पटियाला के राजा की मृत्यु के समय उसका वारिस अल्पायु था। वारबरटन नामक एक अंग्रेज रिजेन्ट के रूप में शासन का संचालन कर रहा था। उसका पटियाला के आर्य समाजी अधिकारियों से झगड़ा चल रहा था। वारबरटन की आड़ में दिल्ली की अंग्रेज सरकार ने आर्य समाज पर राजद्रोह का अभियोग लगाया। ÚÅÁ½ÞãU ð¥ çÖØô» ×ðvv ¥ €ÅÊÚÙ v~®~ ×ðÂý÷é ¥ æØüâ×æÁè · ¤æØü¤ãæõ·¤ôç»ÚÙÌãÁÙ¤ÚÙçÜØæÐ §â×ð¥ æØüâ×æÁ·ðÂÝýãèâÜÜð¤ÚÙ âß·¤Ì·¤}y ÃØçÊÌØõ·¤ô·¤ñç¤Øæ»ØæéæÐ§ãß¥ˆØÌ »¦¢ßÍãè ×ðÙUæ»ØæÐßãÞæ¢·¤ÕÁéÙ·¤âÂüçÙ·¤Ü ¥æØæÌô âÚU¤æéè ¥ç·¤æçÚØõ Ùð·¤ãèæÌô€ØæãÞæ¢æâæõ·ðÇè¿ ×ðÌôâãÞçÙ·¤Ü¦Ìæ ãÐ§â·¤ß·ðçÜ° °·¤çÀãæÞ «ØæÞéØ·¤»¤ÆÙçº¤Øæ»ØæÐ

v| çÌâ ÕÚU v~®~ ·¤ô ¥çØØÁÙÂÿæ¤è¥ ßÚUâð¥ éÚÙÿô·¤ô ß·¤èÜ ÕÙæ¤ÚU×æÜæ «ØæÞéØ×ðÎæçÜçº¤Øæ»ØæÐ ÚÅÁ½ÞãUçâh·¤ÚÙÐãÞé¤§Ù¥ æØÂÜ»æØõ»ØÐâˆØéüÂý¤èæçÜØçÙÌÍæSÌæèÎØéèÎ mÞéé»ôÚÿæè¤øâ×ÍÙâð¥ æØÂõ·¤è ÂçºÂÙ·¤è»§Ð¥æ¿ØÁÙ·¤ÕéèØãÙÐÞÇ¤â ÂÞæÕéÚÙÐÞÇ¤ÂÙ×ð°·¤Öè ß·¤Ü ¥æØüâ×æÁ·ðÂýæ×ðß·¤èÌ ·¤ÚÙÐ·¤ôÌØÁéÙ ÙæÞéãÞéæÞÌÕSÌæèÝãèæèÎØéèÎ Ùð¥ÂÙèÂÞéÞéÞÁØ·¤è ÖÙ·¤ß·¤ÜðßSæÌ æÞéè¤ÚÙÂÞÐÞè·¤èÐ¥ÂÙè ÂÚÞéÞÁØ·¤è ÖÙ·¤Ü»Ìè Îð ØãU ¥çÖØô» v~.w.v~v®·¤ô ßÂêâ ÜðçÜØæè»ØæÐ âÙ÷v~®z ×ð·¤æçÇÞæ×ðÖØçº¤ÚÙÖêº¤Â ¥æØæÐ â¤ñçÇÞ×·¤èÌ ÂÞéÞéÞÁØ·¤è ÖÙ·¤Ü»ãUßãÞéÙãÐ»ØÐÐÙ·ðÂâæ·ðßÜ ¥ÂÙèæÞéÞÁÚU ð¥ÜæèæéÁU Öè ÙæÞéÕ¿æÌÕ ¥æØüÂý çÙÞÌâÖæÂÁæõ·¤ÙÚÞéÞÁÚU ÙæÞéÞÁÚU·¤æØüãÐÞÇ¤ SÌØçº¤â·¤ÖÁð¥ ÚÙÂèçÇÞÕ ×ðÖØçº¤ÚÙ¥·¤èÌ ÂÇÞÐÜô» Îæ¢ÕÎæ¢Ô ÜÜô» »ØÐãÁÚÞéÞÁÚÜô» Öê ·¤è'ßæÌæ×ðâ×æ»ØÐÂçÌ ·¤ôÂ^ÙèÌ·¤èÍæÂ^ÙèÌ·¤ôÂçÌ ·¤èâÌ ÙæÞéÚÞéÞÁÜô»õÙð¥ ÂÙð¥ËÂæçéÕæÌ·¤ôÏÙèÎØõ·ðÇè¿ ÜæØæÐçÁ‹ãÙÚÖêÁÙ·¤ ÕÎÜðÜæõÕæÌ·¤ôÜð¤ÚÙ §âçÕÙæçÜØæÐ·ðSÜ ÚÞéSÍæèׯãÌÞé|®ãÁÞéÕæÌ·¤§âçÕÙæéõ

गये। लालालाजपतराय ने तत्कालीन संसद में यह मामला रखा कि बालकों को वापस उनके माता-पिता को खोजकर दिया जावे। यदि वे न मिले ते उनके धर्म के द्वारा संचालित अनाथालयों में उन्हें भेज दिया जावे। सरकार ने प्रस्ताव को स्वीकार कर ऐसे आदेश भी जारी किये परन्तु उनका क्रियान्वयन नहीं हो सका। इस समय आर्य समाज ने कुछ अनाथालय स्थापित कर कुछ बालकों को उनमें प्रवेश दिया तथा पीड़ितों की सहायता की। परन्तु 'यह तो ऊंट के मुंह में जीरा के समान थी।' आर्य समाज का यह प्रारम्भिक काल था। फिर सन् 1918 में गढ़वाल में अकाल पड़ा। तब भी आर्य समाज आगे आया और पीड़ितों की भरसक मदद की। सन् 1934 में बिहार में भूकम्प आया तो लालालाजपतराय स्वयं वहां गये। आर्य प्रतिनिधि सभा ने 10 लाख रूपये की सहायता की, जो उस काल में एक बड़ी राशि मानी गई। फिर अगले वर्ष 1935 में बिहार में अकाल पड़ गया। तब भी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने 19 हजार रूपये की सहायता राशि भेजी।

फिर सन् 1942 में सिन्ध में भयंकर बाढ़ आई। हजारों लोग बेघरबार हो गये। आर्य समाज ने वहां अपने स्वयं सेवक तथा 23 हजार रूपये की राशि सहायतार्थ भेजी। फिर सिहोर, लुहारू तथा सिन्ध प्रान्त में सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगने पर आर्य समाज ने सत्याग्रह किया और सभी जब विजय पाई। सन् 1937 में निजाम हैदराबाद ने अपनी हिन्दू प्रजा पर कई पाबन्दियां लगा दी। मन्दिरों में शंख झालर बजाना बंद कर दिया। धार्मिक कार्य के लिए राज्य से आज्ञा लेना अनिवार्य कर दिया। आर्य समाज में नारायण स्वामी के नेतृत्व में सत्याग्रह किया जिसमें 17 हजार से भी अधिक सत्याग्रही जेल गये। सत्याग्रहियों पर जेल में भी बड़ा अत्याचार हुआ। कई लोग जेल में शहीद हो गये। सत्याग्रह लम्बा चला। अन्त में निजाम ने हार मानकर हिन्दुओं पर लगे सभी प्रतिबन्ध वापस ले लिये। सभी सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया गया। सत्याग्रह पर हुआ व्यय भी आर्य समाज को निजाम द्वारा दिया गया। इस प्रकार आर्य समाज की देश के शारीरिक स्वास्थ्य, आत्मिक उन्नति तथा सामाजिक उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है और वर्तमान में भी आर्य समाज अपने इस कार्य में जी-जान से जुटा हुआ है।

पृष्ठ 2 का शेष-आध्यात्मिकत्वम्

प्रदर्शयिष्याम:।'' पाठक इसको समझने की चेष्टा करें। अध्यास 'अतस्मिन् तद् बुद्धि:' को माना है। अर्थात् पुत्र, स्त्री के विकल होने से अपने को विकल मानना यह दूसरे का अपने में अध्यास है। स्थूल, कृश, गोरा, काला यह देह-धर्म मूक, अन्धा, काला यह इन्द्रिय धर्म, काम, संकल्पादि अन्त: करण के धर्म हैं। अर्थात् जीवात्मा इन सबसे पृथक् है। 'असङ्गोऽयं पुरुष:' इति सां० १।१५ जीवात्मा का पञ्च भौतिक पदार्थों से, जीवात्मा का जीवात्मा तथा ईश्वर से संयोग सम्बन्ध है। परमाणु, माया, प्रकृति यह अपने अपने पारिभाषिक शब्द हैं। न्याय में परमाणु, सांख्य में प्रकृति, वेदान्त में माया से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। परमाणु, माया, प्रकृति नित्य है। जीवात्मा भी नित्य और परमात्मा भी नित्य है। नित्यत्वेन तीनों एक से हैं। परमाणु निरवयव, जीवात्मा निरवयव, परमात्मा निरवयव अर्थात् निरवयवत्व से तीनों एक से हैं, परमाणु जड़ है, साकार है, अर्थात् मूर्त्त है; जीवात्मा और परमात्मा निराकार है। साकार परमाणु कभी निराकार नहीं होता, जीव और परमात्मा कभी साकार नहीं होते।

मूर्त्तत्वाद् घटादिवत् समानधर्मापत्तावपसिद्धान्त: सां० १।५० अर्थात् जीव और ब्रह्म मूर्त्त नहीं, अन्यथा घटादियों की तरह नाशवान् हो जावेंगे और वैदिक सिद्धान्त अपसिद्धान्त हो जावेगा। परमाणु में ज्ञान नहीं, जीवात्मा परमात्मा में ज्ञान है, ज्ञानत्वेन जीवात्मा परमात्मा एक से हैं। किन्तु जीवात्मा अल्पज्ञ है, परमात्मा सर्वज्ञ है 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्' योग दर्शन। जीव और परमाणु व्याप्य हैं, परमात्मा व्यापक है। जीव, ब्रह्म, प्रकृति इन सबका संयोग सम्बन्ध है, समवाय नहीं। समवाय अयुतसिद्धवृत्ति होता है, अर्थात् गुण गुणी अवयव अवयवी का।

जीव एकदेशी है, परमात्मा सर्वदेशी सिद्ध है। जीवात्मा तथा परमाणु से परमेश्वर कभी पृथक् नहीं होता, अर्थात् उनका संयोग सम्बन्ध है। इसी को श्री शंकराचार्य ने अभिन्ननिमित्तोपादान कारण कहा है अर्थात् 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। उपनिषदों में कहा भी है 'यस्य पृथिवी शरीरं यस्यात्मा शरीरम्''ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' यजु: ४०।१ अर्थात् जड़ और चेतन सबमें ईश्वर बसा हुआ है। जैसे निराकार जीव पिण्ड में है, वैसे ही निराकार ब्रह्म ब्रह्माण्ड में है। जीव शरीर से जब निकल गया तो शरीर को जलाकर कारण में पहुँचा दिया जाता है। ऐसे ही ब्रह्म इस सृष्टि रूप कार्य से पृथक् हो गया, जैसे जीव के बिना देहरूपी कार्य नहीं रह सकता, ऐसे ही ब्रह्माण्डरूप कार्य ब्रह्म के बिना नहीं रह सकता अर्थात् नाश हो जाता है। 'नाश:कारणलय:' सां० अर्थात् कार्य का कारण में लय हो जाने का नाम नाश है। परमेश्वर कारण जगत् में और चेतन जीव में व्यापक है। मुक्तात्मायें एकत्व को अर्थात् एक आध्यात्मिक तत्व ईश्वर को देख रही हैं दिव्य चक्षुओं से। कोई कोई कहते हैं जीवात्मा अल्पज्ञ है कि जब प्रकृति में होता है, तब अपने को प्रकृतिमय समझता है और जब मोक्ष में ब्रह्म से संयोग होता है तो अपने को ब्रह्ममय समझता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूं ऐसा तो अज्ञान अवस्था में कहता है, जब पूर्ण ज्ञानी निर्भ्रान्त हो गया तो मैं ब्रह्ममय हूं ऐसा कहता है।

'आनन्दमयोऽभ्यासात्' वेदान्त अध्या० १ पाद १ सू० १२। आनन्दं लब्ध्वानन्दी भवति, उपनिषद्। अर्थात् बहुत आनन्द वाला हो जाता है। **'तत् प्रकृतवचने मयट्' अष्टा० ५।४।२१** प्राचुर्यार्थे मयट् यथान्नमयो यज्ञ:-अर्थात् बहुत अन्न वाला एवमानन्दप्रचुरत्वमानन्दमय: उच्यते। शांकरभाष्य। अर्थात् अन्य मनुष्यों से अनेक गुणा आनन्द वाला मुक्त पुरुष हो गया। यदि कोई कहे यह सब पूर्व पक्ष है तो उत्तर पक्ष सत्य नहीं। यथा अध्यास को भगवान् शंकराचार्य ने अनादि अनन्त नैसर्गिक लिखा है। जो अनादि अनन्त नैसर्गिक स्वाभाविक है, वह कभी नहीं छूट सकता। हां प्रवाह शब्द और जोड़ दिया जावे तो अध्यास नष्ट होने से मोक्ष और मोक्ष से, अवधि समाप्त होने पर फिर, आ जाना यही प्रवाह शब्द जोड़ने से सत्य बन सकता है। जल-बिन्दु और समुद्र का, नदी और समुद्र का, अग्नि-स्फुलिङ्ग और सूर्य का, घटाकाश, मठाकाश, महाकाश का बिम्ब प्रतिबिम्ब इत्यादि का कोई दृष्टान्त नहीं घटता। जीव ब्रह्म का कोई कार्य नहीं, यथा घट मृत्तिका का कार्य है; अत: ब्रह्म उपादान नहीं बनता। 'यतो वा तस्माद् वा' इत्यादि वाक्यों में निमित्त में पञ्चमी है। जो भाई आनन्द का तिरोभाव मानते हैं और मुक्ति में आनन्द स्वरूप हो जाना मानते हैं, वे महर्षि कपिल की दृष्टि में मन्दधी हैं।

'विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम्' सां अ० ५ सू० ६८। नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वाद् सां० ५।७४ अर्थात् आनन्द का अभिव्यक्त हो जाना मुक्ति नहीं, यत: आनन्द गुण जीवात्मा का नहीं। यथा शीतल जल तथा लोहा आदि पदार्थ अग्नि के संयोग से अग्नि रूप अग्निविशिष्ट कहलाते हैं, ऐसे ही जीवात्मा परमेश्वर के आनन्द गुण से आनन्दी हो जाता है। 'एकोऽहं बहु स्याम्' इत्यादि वाक्य जातिवाचक हैं। इसी को 'आत्मैकत्वविद्याप्रतिपत्तये एकत्वमनुपश्यत:' भगवान् शंकराचार्य ने लिखा है। आत्मत्व धर्म जीवात्मा और परमात्मा में एक सा रहता है। जैसा सांख्य में नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वाद् अ० १ सूत्र १५५ लिखा है। जातिपरत्वात् मानने से अद्वैत के प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों में विरोध नहीं आता, यदि कहा है ही एक वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् सां० १।१५८ अर्थात् ऋषि वामदेव आदि मुक्त हो चुके हैं, इसलिए तुम्हारा अद्वैत नहीं बनता। और कहो कि आज तक कोई नहीं हुआ तो **'अनादावद्ययावदभावाद् भविष्य-त्यप्येवम्** सां० अ० १।१५६ अर्थात् आगे भी मुक्ति नहीं होगी।

'इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेद: सां० अ० १ सू० १६० अर्थात् अत्यन्त उच्छेद जीवात्मा का कभी नहीं होता। पाठक वेदान्त शंकरभाषाय के ''वैषम्यनैर्घृण्याधिकरणं कृत्स्नाप्रसक्तयाधिकरणमितरव्यपदेशाधिकरणं जगद्व्यापाराधिकरणाम्' आदि अनेक स्थल देखें। वास्तविक आध्यात्मिक तत्व सर्वव्यापक परमेश्वर ही है। इसी को प्राचीन ऋषि मुनियों ने माना है और इस समय में भी विद्वान् ऐसा ही मानते हैं। भारत में इसी आध्यात्मिक विद्या ब्रह्मविद्या का जब प्रचार होगा, तो भारत जगत् गुरु बनेगा। ब्रह्मा से लेकर महर्षि दयानन्द पर्यन्त जीव ब्रह्म प्रकृति रूपी त्रैत्वाद वैदिक सिद्धान्त है।

शोक समाचार

आर्य समाज शास्त्री नगर जालन्धर की सदस्या श्रीमती निर्मला रानी गुप्ता जी का गत दिनों देहावसान हो गया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुप्ता परिवार से पूरी सहानुभूति व्यक्त करती है और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान दे।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

आर्य समाज फाजिल्का में नव सम्वत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस धूमधाम से मनाया

आर्य समाज फाजिल्का में नव सम्वत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस समारोह के अवसर पर आयोजित हवन यज्ञ में आहुतियां प्रदान करते हुये जिलाधीश डा. सेनू दुग्गल व अन्य समाज सेवी संस्थाओं के सदस्य। चित्र दो में आर्य समाज के संरक्षक डा. सुशील वर्मा द्वारा लिखित पुस्तक वैदिक देव यज्ञ का विमोचन करते हुये जिलाधीश डा. सेनू दुग्गल एवं अन्य।

आर्य समाज फाजिल्का एवं स्त्री आर्य समाज फाजिल्का में नव सम्वत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस आर्य समाज के अध्यक्ष डा. नवदीप जसूजा के नेतृत्व में धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर परआर्य समाज के पुरोहित श्री प्रेम नारायण विद्यार्थी द्वारा वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ 11 कुंडीय हवन यज्ञ करवाया गया। हवन यज्ञ में नगर में विभिन्न समाज सेवा कार्य कर रही संस्थाओं सेवा भारती, भारत विकास परिषद, सर्व धर्म योग साधना केन्द्र, फाजिल्का योग समिति, मानव कल्याण सभा, लायंस क्लव विशाल, सोशल वैल्फेयर सोसायटी, बार एसोसिएशन, श्री गौरक्षणी सभा, श्री राम कृपा सेवा संघ व वूमैन वैल्फेयर सोयायटी के पदाधिकारियों व सदस्यों ने यज्ञ में वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ आहुतियां प्रदान की। इस अवसर पर आदर्श गुरुकुल दुधली मुजफ्फरनगर के प्रबन्धक आचार्य पवनवीर ने नव सम्वत्सर की महत्ता व आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा वेदों के प्रचार, देश की स्वतंत्रता, नारी शिक्षा, नारी उत्थान, पिछड़ों के उत्थान व अन्य समाज उद्धार के कार्यों का उल्लेख किया। कार्यक्रम की मुख्यातिथि फाजिल्का की ऊर्जावान जिलाधीश डा. सेनू दुग्गल ने अपने सारगर्भित सम्बोधन में सभी को नव सम्वत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस की बधाई दी। उन्होंने हवन यज्ञ में भाग लेने वाली संस्थाओं व विभिन्न समाजसेवी संस्थाओं की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि अच्छे लोगों से ही समाज चलता है और संस्थाओं के कार्यों से ही समाज की उन्नति एवं उत्थान होता है। उन्होंने आर्य समाज फाजिल्का द्वारा किये जा रहे कार्यों की भी भूरि भूरि प्रशंसा की। इस अवसर पर बार एसोसिएशन फाजिल्का के अध्यक्ष गुलशन महरोक, नैशनल डिग्री कालेज फाजिल्का की प्रिंसीपल रचना महरोक, इंडियन मैडीकल एसोसिएशन के अध्यक्ष डा. नरिन्द्र सेठी, उप जिला शिक्षा अधिकारी अंजू सेठी व अरोडवंश सभा फाजिल्का के अध्यक्ष बाबू लाल अरोडा ने विशिष्ट अतिथियों के रूप में भाग लिया। इस अवसर पर आर्य समाज के संरक्षक डा. सुशील वर्मा द्वारा लिखित चौथी पुस्तक वैदिक देव यज्ञ का विमोचन जिलाधीश डा. दुग्गल, महर्षि दयानन्द बी.एड कालेज के संचालक डा. रणवीर प्रताप असीजा व डा. विजय प्रवीण व जिला वूमैन वैल्फेयर सोसायटी की चेयरपर्सन एडवोकेट नीना मक्कड़ ने किया। कार्यक्रम में आर्य समाज फाजिल्का के संरक्षक किशोर चंद पुंछी, अध्यक्ष डा. नवदीप जसूजा, सचिव अमित उबवेजा, प्रफुल्ल चन्द्र नागपाल, एडवोकेट संजीव मक्कड़, अरुण आर्य, सत्यास्वरूप व अनूप पुंछी, शाम लाल आर्य, हरबंस लाल आर्य, सुभाष कपूर, विनय मनोचा, एडवोकेट विजय पुजारा, रवि अरोड़ा, अरुण मिड्ढा, प्रिंसीपल राजेश चौहान, राम चन्द्र चुघ, अभय चावला, इंजीनियर राकेश भुंसरी, स्त्री आर्य समाज की संरक्षिका सुदेश नागपाल, अध्यक्ष डा. सिम्मी जसूजा, कृष्णा कुक्कड़ इन्दू भुंसरी, आशा मिनोचा, सुनीता मिड्ढा, प्रमोद आर्य, नीलाम पुजारा, अंजू पुंछी, दर्शन चुघ उपस्थित थे। स्त्री आर्य समाज की अध्यक्षा डा. सिम्मी जसूजा ने सभी का आभार व्यक्त किया व आर्य समाज तथा स्त्री आर्य समाज द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार व विभिन्न समाज सेवी कार्यों का विवरण दिया। उन्होंने बताया कि स्वामी दयानन्द ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने सर्वप्रथम नारी शिक्षा, नारी उत्थान व विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि आज नारी प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी है जिसके चलते फाजिल्का में जिलाधीश डा. सेनू दुग्गल, एस. एस. पी. अवनीत कौर सिद्धू, ए.डी.सी. डा. मनदीप कौर व जिला एवं सत्र न्यायाधीश माननीय मैडम जतिन्द्र कौर सभी उच्च पदस्थ हैं। उन्होंने कहा कि हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि एक नारी में माँ के रूप में निर्माण करने की कला है। माता निर्माता भवति इसीलिए कहा गया है। निर्माण की कला में नारी को प्रथम स्थान दिया गया है। मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरूषो वेद अर्थात् सर्वप्रथम माता फिर पिता और उसके बाद गुरू उत्तम नागरिक का निर्माण करता है। शतपथ ब्राह्मण का यह वाक्य नारी के निर्माण कौशल की महत्ता को प्रतिपादित करता है। अन्त में सभी आए हुये महानुभावों का आर्य समाज के प्रधान जी ने धन्यवाद किया।

–डा. नवदीप जसूजा प्रधान

वेदवाणी

स्वराज्य के लिए!

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।

–ऋक्० १।८०।७

ऋषिः–**गोतमो राहूगणः।।** देवता–**इन्द्रः।।** छन्दः–**भुरिग्बृहती।।**

विनय–हे इन्द्र! तू स्वराज्य की साधना में सफल होगा, अवश्य सफल होगा। माया वाले मृग को माया द्वारा ही मारकर अवश्य सफल होगा, क्योंकि तेरा वीर्य, तेरा बल स्वाभाविक है। संसार में एक तू ही है जिसके लिए बल कहीं बाहर से प्रेरित नहीं हुआ है, कहीं अन्यत्र से नहीं आया है। यह तेरे ही अन्दर से निकला है, तेरा अपना है, तेरा स्व–बल है। स्व–बल से ही स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। तेरे मुक़ाबले में जो मायावी मृग है उसके पास स्वबल नहीं है। वह छल–कपट द्वारा तेरे ही बल को तेरे विरुद्ध प्रयुक्त कर रहा है और राज्य कर रहा है, परन्तु ऐसा माया का बल कितनी देर टिक सकता है? वह नहीं जानता है कि माया उत्पन्न होते ही अपने साथ विरोधी माया को भी उत्पन्न करती है। माया जन्म के साथ ही अपने विनाश के लिए अभिशापित होती है। ऋण–विद्युत् धन–विद्युत् को पैदा किये बिना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। इसलिए हे आत्मन्! तू इन भयङ्कर–से–भयङ्कर भी दीखने वाले माया के बने मृगेन्द्रों से, प्रकृति के पुतलों से, क्यों भयभीत होता है? यह माया (यह प्रकृति) तो स्वयं विनश्वर स्वभाववाली है। अपने में ही विरुद्धता रखने के कारण स्वयं विनष्ट हो जाने वाली है। देख, ये परस्पर विरोधी रज और तम स्वयं लड़ रहे हैं। उनमें धनात्मक होने से यद्यपि रज विजयी हो रहा है, पर वह भी उससे अधिक धनात्मक सत्त्व के मुक़ाबले में दब जाता है और फिर रज और तम के बिना न रह सकने के कारण वह विजयी सत्त्व भी तेरे सामने से स्वयं भाग जाता है। यह देह घात करने से कभी नष्ट नहीं होता, फिर–फिर पैदा हो जाता है, परन्तु जब तू इस अन्नमय प्रकृति से बने देह को ही ठीक रखकर इसके अन्दर इसकी विरोधिनी प्राणमय, मनोमय आदि प्रकृति की साधना करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है तो यह देह स्वयं सदा के लिए छूट जाता है। यह चञ्चल मन अपनी विरोधी मनन, एकाग्रता का मनन चलाता है तो वह मन एकाग्र हो जाता है, शान्त, चुप होकर मर जाता है। इसी प्रकार तू इन अजेय संस्कारों को भी अपने विरुद्ध संस्कारों द्वारा ही जय कर लेता है। एवं, हे इन्द्र! तू देह–से–देह को दग्ध करता है, मन–से–मन को मार लेता है, संस्कारों–से–संस्कारों को नष्ट कर देता है, प्रकृति के पुतलों को प्रकृति के द्वारा ही पिघला देता है, इन माया के मृगों को माया द्वारा ही मार देता है, पर यह काया, माया से इसीलिए मरती है चूँकि इसमें कुछ भी स्व–बल नहीं है, अतः हे इन्द्र! जब तू अपना स्वबल प्रकट करेगा तो निःसन्देह तेरा स्वराज्य हो जाएगा, तेरा स्वराज्य स्थापित हो जाएगा।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org